International Journal of Research Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

औपनिवेशिक भारत में सांप्रदायिकता का विकासः एक विश्लेषण

Surender Singh
Ph.D. Research Scholar
Department of A.I.H Culture & Archaeology
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Haridwar
Email – surenderchouhan04@gmail.

भूमिकाः– सांप्रदायिकता ऐसी अवधारणा है जिसके तहत समानधर्म वालों के बीच राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक हित समान होते है। यह एक ऐसी मान्यता है जिसके अनुसार धर्म न सिर्फ समाज का आधार होता है। बल्कि यह समाज के विभाजन समाज का आधार होता है। बल्कि यह समाज के विभाजन की आधारभूत इकाई तैयार करता है। शुरू में सांप्रदायवाद भारतीय समाज का हिस्सा नहीं था और न ही यह मध्यकालीन भारत की देन था।[1] मध्यकाल भारत में संख्यात्मक दृष्टि से मुख्यतः दो धार्मिक समूह थे। हिन्दू व मुस्लिम लेकिन सांप्रदायवाद अस्तित्व में नहीं थी।[2] सांप्रदायवाद धर्म के द्वारा कम और राजनैतिक विचारों द्वारा अधिक प्रचारित होता था। लेकिन वस्तुनिष्ठता की बात करें तो यह भारत में उतना ही प्राचीन था जितना ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार। वस्तुतः एक विचारधारा के रुप में सांप्रदायवाद आधुनिक युग की देन था और उसकी उत्पत्ति औपनिवेशिक शासन की नियुक्त थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के मध्य में विशेषकर उग्रवादी चरण में धार्मिक पुर्नउत्थानवादी प्रवृतियां विकसित होती दिखाई देती है। अर्थात धार्मिक प्रतिको पर बल देने के कारण सांप्रदायिकता को बल मिला।[3] औपनिवेशिक इतिहास लेखन के तहत जिसमें कुछ भारतीय भी शामिल थे। भारतीय इतिहास की सांप्रदायिक व्यवस्था प्रस्तुत की ओर भारतीय इतिहास का विभाजन हिन्दु–मुस्लिम और ब्रिटिश काल में कर दिया।सांप्रदायिक राजनैतिक को प्रोत्साहन देने में मुस्लिम जागीरदारों की भी विशेष भूमिका

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

रही है। मुस्लिम कालीन वर्ग एवं नवाब की प्रगतिशील आर्थिक कार्यक्रम के तथा बदले हुए समाजवादी रूझान के प्रति अत्याधिक चिंतित थे। उन्होंने अपनी स्थिति को सुरक्षित करने हेतू सांप्रदायिकता राजनैतिक को बढ़ावा दिया।[4]

साम्प्रदायिकता विकास के चरणः 1857 ई. में सर सैयद अहमद खां ने इस समस्या को समझा कि मुस्लिम सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ते जा रहे है तथा उसे मुस्लिम पुर्नत्थान के विकास के लिए कार्य करना शुरू किया। प्रारम्भ में तो उनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी था परन्तु बाद में उनके द्वारा किये गये कार्यो एवं उपायों से उनकी सांप्रदायिक दृष्टि का पता चलता है 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के शुरू में औपनिवेशिक सरकार ने एक नवीन रणनीति अपनाई जिसमें उदारवादी और साम्राज्यवादी विचारों का सामंजस्य था जिसका उद्देश्य था शिमला निर्वाचक मण्ड़ल लागू करना।[5] 1913 ई. के अधिवेशन में मुस्लिम लीग द्वारा स्वराज के लक्ष्य को अपना लिया जाना तथा लीग का कांग्रेस के निकट आना। इस निकटता का परिणति 1916 के लखनऊ समझौते के रुप में हुई। लेकिन कुछ इतिहासकारों का मानना यह है कि लखनऊ अधिवेशन में सांप्रदायिक मुद्दों को कांग्रेस द्वारा मान लिया जाना सांप्रदायिकता के विकास में कांग्रेस की प्रथम भूल थी।[6]

1927 ई. में जिन्ना ने दिल्ली प्रस्ताव के माध्यम से प्रमुख चार मांगों का समर्थन किया, जिसमें सिंध को बंबई से अलग कर पृथक प्रान्त, केन्द्रीय विधानमंडल की 1/3 सीटें मुस्लिमों के लिए आरक्षित तथा मुस्लिम बहूल प्रान्तों में मुसलमानों की विधानमंडल में जनसंख्या के आधार पर सीटें आबंटित की गई तथा मार्च 1929 ई. में जिन्ना द्वारा 14 सूत्री मांगे रखी गई और यही मांगे मुस्लिम सांप्रदायिकता राजनैतिक का आधार बनी।[7] इधर हिन्दू संप्रदायवाद के उद्भव के साथ मुस्लिम संप्रदायवाद भी अपनी जड़े जमाने लगा। तथा 1907 ई. में यू.एन. मुखर्जी एवं लाल चंद ने पंजाब में हिन्दु महासभा की स्थापना की। 1915 ई. में हिन्दू महासभा की स्थापना की गई तथा 1925 ई. में डॉ. हेडगेयर ने

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

नागपुर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना की।इन संगठनों के बनने के कारण भी भारत में सांप्रदायिकता को बढ़ावा मिला।

1932 ई. के सांप्रदायिक पचांट (ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्से मैकडोनाल्ड़) में मुस्लिम लीग की लगभग समस्त सांप्रदायिकता मांगे मान ली गई। लेकिन मुस्लिम लीग के समक्ष एक समस्या उत्पन्न हुई। मुस्लिम जनमत को आकर्षित करने के लिए उनके पास अब कोई निश्चित मुद्दा नही रहा और यही वजह थी कि मुस्लिम लीग का प्रदर्शन 1937 ई. के चुनाव में बहुत बुरा रहा तथा मुस्लिम लीग की सरकार किसी भी प्रान्त में गठित नहीं हुई। 1937 के चुनाव सांप्रदायिकता के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुई। 1937 के चुनाव की असफलता से जिन्ना ने कई महत्त्वपूर्ण फैसला लेना शुरू कर दिया उन्होंने निर्णय लिया कि चुनाव बहुमत या प्रतिनिधि संस्थाएं होगी तो मुस्लिम लीग स्थायी रुप मजबूत साबित होगी। अतः 1940 के लाहौर अधिवेशन में पृथक राष्ट्र के प्रस्ताव को स्वीकार किया गया। दूसरी ओर 1937 के चुनाव के आधार पर आई.एन.सी. के नेता भी मुसलमानों के बीच अपना आधार नहीं बना सके। तथा मुसलमानों को आई. एन. सी की ओर आकर्षित करने के लिए जनसंपर्क अभियान शुरू किया गया।[8] इस प्रकार 1937 ई. का चुनाव भारत में सांप्रदायवाद के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस काल में जमींदारों व बाद में दलितों को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से अलग करना चाहा।[9] किन्तु ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम सांप्रदायवाद को अधिक प्रोत्साहन किया। मार्च 1940 के लीग लाहौर अधिवेशन में पृथक प्रांत का प्रस्ताव पारित किया गया। जिससे 1942 के सी.आर. फार्मूला तथा गांधी जिन्ना वार्ता के माध्यम से आई. एन.सी. व लीग के बीच समझौता कराने की कोशिश की गई। लेकिन जिन्ना अपनी माँगों पर अड़िग रहे। 1940 ई. के बाद भी ब्रिटिश नीति निश्चित रुप से अल्पसंख्यकों को प्रोत्साहित करने की रही थी। स्पष्ट है कि 1942 में क्रिप्स मिशन लाया गया।[10] इसमें एक लोकल ऑपरेशन का

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

प्रावधान किया गया और इसने पाक के प्रस्ताव का समर्थन किया। तथा शिमला सम्मेलन में लीग को वोट का अधिकार दिया गया और वेवेल ने अपनी योजना मात्र इसलिए रद कर दी की लीग इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी।[11]

ब्रिटिश सरकार कैबिनेट मिशन योजना के माध्यम से अपनी विदेश नीति में एक से अधिक उद्देश्य पूरा कर रही थी। उनका मानना था कि विभाजन के प्रति सरकार का रूख नर्म रहेगा। तो एन.आई.सी. ब्रिटिश कॉमनवेल्थ की सदस्यता स्वीकार कर लेगी। तथा एक अविभाजित भारत कॉमनवेल्थ में ब्रिटिश का एक ताकतवर सहयोगी बन जायेगा।[12] लेकिन दूसरी तरफ कैबिनेट मिशन ने प्रान्तों के समूहीकरण का प्रावधान लाकर अरब देशों को संतुष्ट करने का प्रयास किया। कुछ असंतोष कारणों के बाद लीग ने 6 जून 1946 को कैबिनेट मिशन प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। आई.एन.सी. ने भी इसे स्वीकार किया। परन्तु प्रान्तों के सामूहीकरण के मुद्दे पर मतभेद हो गया।[13] सर्वप्रथम पाकिस्तान शब्द का प्रयोग केन्द्रीय विश्वविद्यालय के एक स्नातक चौधरी रहमत अली द्वारा 1934 में एक अवैज्ञानिक कार्य था। यह मुस्लिम अल्पसंख्यकों की महत्त्वाकांक्षा को दूर करने में असमर्थ था। लीग ने इसका व्यापक प्रचार किया किन्तु मुस्लिम बहुल प्रान्तों में इस प्रस्ताव को समर्थक नही मिला बल्कि उन्ही प्रान्तों में मिला जहाँ मुस्लिम अल्पसंख्यक थे।[14]

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

उपसंहारः साम्प्रदायिकता अतीत की एक विरासत है, लेकिन सच्चाई यह है कि साम्प्रदायिकता प्राचीन और मध्ययुगीन विचारधाराओं का इस्तेमाल जरूर करती है तथा उन पर आधारित भी होती है। यह आधुनिक विचारधारा और राजनैतिक प्रवृतियों के साथ–साथ आधुनिक सामाजिक समूहों, वर्गों और ताकतों की सामाजिक आकांक्षाओं को व्यक्त करती थी। और उनकी राजनैतिक जरूरतों को पूरा करती थी। भारत में साम्प्रदायिकता के विकास का मुख्य कारण कई धर्मों के समानान्तर का अस्तित्व था, परन्तु धर्म की इसके विकास में कोई बुनियादी भूमिका नही थी। फिर भी साम्प्रदायिकतावादियों ने धर्म का प्रयोग अपने अनुयायियों को प्रोत्साहित करने के लिए किया। साम्प्रदायिकता 1939 ई० के बाद और खास तौर पर 1945–47 ई० के दौरान जनता के बीच अपनी जड़े तभी जमा पाई जब उसमें ''धर्म खतरे में है'' का उत्तेजक नारा लगाना शुरू किया। अतः स्पष्ट है कि धर्म से साम्प्रदायिकता पैदा नही हुई लेकिन उसने यह जमीन जरूर तैयार कि जिससे साम्प्रदायिकता का पौधा फल–फूल सकता था। धर्मनिरपेक्ष ताकतों के पास सांप्रदायिकता से मुकाबला करने के लिए किसी दीर्घकालीन कार्यनीति का अभाव था। सांप्रदायिकता के विभिन्न रुप तब तक गायब नही होंगे। जब तक उन्हें पालने–पोसने वाली परिस्थितियां कायम रहती है तथा जब तक ऐसी विचारधाराओं का विरोध नहीं किया जाऐगा। इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सांप्रदायिकता इतिहास की दृष्टि से न केवल तथ्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक तरीके से गलत है, अपितु वह अवैज्ञानिक राजनीति की उपज है, जिसे पहले विदेशी शासकों ने जन्म दिया और फिर उसका इस्तेमाल अपने राजनैतिक उद्देश्यों के लिए सांप्रदायवादियों ने किया।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 09
August 2017

संदर्भ सूची

1. चन्द्रा विपिन, ***आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति*** अनामिका पब्लिशर्ज, दिल्ली, 2011, पृ. 138
2. **वही, पृ. सं. 140**
3. चन्द्रा विपिन, मुखर्जी मृदुला, ***भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष*** हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2011, पृ. 62
4. चन्द्र विपन, ***समकालीन भारत***अनामिका पब्लिशर्स दिल्ली, 2011, पृ. 115
5. सिन्हा मनोज, ***समकालीन भारत एक परिचय*** प्रकाशक ओरयंट ब्लैकस्वान नई दिल्ली, 2012, पृ. 303
6. वही, पृ.304
7. शुक्ला मंजु, ***भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास***, प्रकाश रितु पब्लिकेशन्स जयपुर 2011, पृ. 238
8. ठाकुर अतुल कुमार, ***इण्डिया सिन्स 1947*** नियोगी बुक पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृ. 325
9. वही, पृ.327
10. स्मिथ डब्लु. सी.**,** ***मार्डन इस्लाम इन इंडिया*** लाहौर, 1963, पृ.34
11. के. बी. कृष्ण, ***द प्रोब्लम ऑफ मॉइनोरिटी*** लंदन 1939, पृ. 40
12. ***वही,*** पृ.42
13. प्रसाद बिन्नी,***दहिन्दु–मुस्लिमक्वशचन,***इलाहाबाद, 1941पृ. 80
14. ***वही*** पृ. 81